

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 2: उद्धव द्वारा भगवान् की बाल-लीलाओं का वर्णन

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने प्रिय भगवान् के विषय में एक सरल प्रश्न पूछे जाने पर, महान् भक्त उद्धव कोई उत्तर नहीं दे पाते — उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं, बन्द आँखों से अश्रु बह निकलते हैं, और लगभग एक घण्टे तक वे स्मृति के इस सागर में खोए, मौन रहते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में, यमुना तट पर उद्धव से पुनर्मिलित निर्वासित विदुर ने अपनी दीर्घ, स्नेहिल प्रश्नावली का समापन एक अन्तिम अनुरोध के साथ किया था: मुझे उस अजन्मा भगवान् का समाचार सुनाओ, जो यदुवंश में उन सबके हित के लिए अवतरित हुए जिन्होंने उनकी शरण ली है। तृतीय स्कन्ध का यह द्वितीय अध्याय उद्धव का उत्तर है — किन्तु यह उत्तर के रूप में आरम्भ नहीं होता। यह मौन से आरम्भ होता है। कृष्ण के नाम के स्मरण मात्र से उद्धव एक घण्टे लम्बी भावविभोर समाधि में डूब जाते हैं, और जब वे धीरे-धीरे सामान्य चेतना में लौटते हैं, तभी वे बोलते हैं — पहले उस संसार के विरोधाभास पर एक दीर्घ, विस्मयकारी विलाप में जो भगवान् के साथ रहकर भी उन्हें पहचान न सका, और उसके पश्चात् ही कृष्ण की बाल-लीलाओं के उस संक्षिप्त, स्नेहिल वर्णन में जो इस अध्याय को इसका गीता प्रेस-शीर्षक देता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 2 (द्वितीय अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: उद्धव द्वारा भगवान् की बाल-लीलाओं का वर्णन
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (दृश्य की संक्षिप्त भूमिका बाँधते हुए, श्लोक 1–6); तथा उद्धव (जिनका विदुर को दिया गया सम्बोधन शेष सम्पूर्ण अध्याय में है) — यह सम्पूर्ण कथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक तथा नैमिषारण्य की सभा को सुनाई जाती है
- मुख्य श्रोता: विदुर, यमुना-तट पर उद्धव का उत्तर सुनते हुए; तथा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य का ऋषि-समुदाय (सूतजी से सुनते हुए)
- मुख्य स्थान: यमुना नदी का तट, अध्याय 1 में वर्णित पुनर्मिलन से सीधे आगे बढ़ते हुए
- मुख्य विषय-वस्तु: कृष्ण के प्रति उद्धव का अभिभूत करने वाला, शब्दातीत प्रेम; भगवान् की विनम्रता, करुणा तथा गोपनीयता के विरोधाभास पर उनका विस्मयकारी विलाप; तथा ब्रज में कृष्ण के जन्म एवं बाल-लीलाओं का उनका संक्षिप्त वर्णन
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 2, श्लोक 1–34
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

एक प्रश्न जिसका उत्तर शब्दों में सम्भव नहीं

श्रीशुकदेव परीक्षित को बताते हैं कि विदुर के प्रश्न के पड़ते ही क्या हुआ। उद्धव — वह महान् भक्त, जो अपने बचपन के खेलों में भी भगवान् की उपासना में इतने लीन हो जाते थे कि अपनी माता के भोजन के बुलावे का भी उत्तर देना भूल जाते थे — कृष्ण के नाम के स्मरण मात्र से अपने भगवान् में इतने लीन हो गए कि वे एक शब्द भी नहीं बोल सके। समय के प्रवाह में उनकी सेवा करते-करते श्वेतकेश हो चुके, उनके विचार सदैव उन्हीं चरणों में स्थिर, वे बस उत्तर नहीं दे सके।

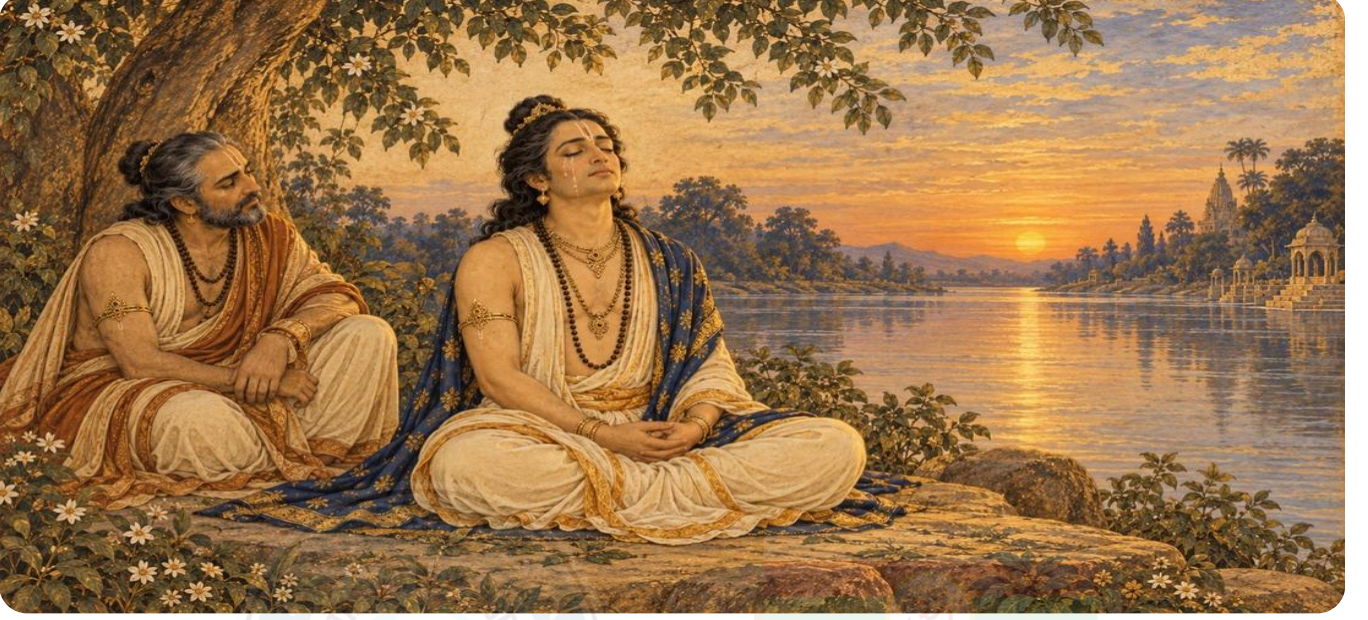
श्री शुक उवाच

इति भागवतः पृष्ठः क्षत्रा वार्ता प्रियाश्रयाम् ।

प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca iti bhāgavataḥ pṛṣṭaḥ kṣattrā vārtāṁ priyāśrayāṁ prativaktum na cotseha autkaṇṭhyāt smāriteśvaraḥ

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: विदुर द्वारा हृदय को प्रिय समाचार के विषय में इस प्रकार पूछे जाने पर, वह महान् भक्त उद्धव, अपने भगवान् के स्मरण से इतने अभिभूत हो गए कि उत्तर नहीं दे सके। (स्कन्ध 3, अध्याय 2, श्लोक 1)



श्रीकृष्ण के चरणों से प्रवाहित अमृत में पूर्णतः लीन, उद्धव लगभग एक घण्टे तक मौन रहते हैं, उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं और बन्द आँखों से अश्रु बह निकलते हैं, जबकि विदुर शान्त पहचान के साथ यह देखते हैं (श्लोक 2-6)।

लगभग एक घण्टे तक उद्धव ठीक इसी अवस्था में रहते हैं — कृष्ण के चरण-कमलों से प्रवाहित अमृत में पूर्णतः लीन, अपनी ही तीव्र भक्ति के आवेग से अभिभूत, मूक। उनके पूरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं; बन्द आँखों से अश्रु फूट पड़ते हैं। विदुर, अपने मित्र को इस स्नेह की बाढ़ में डूबा देखकर, तुरन्त समझ जाते हैं कि उद्धव ने जीवन के परम लक्ष्य को साक्षात्कार कर लिया है — कि यह मौन किसी उत्तर का अभाव नहीं, अपितु स्वयं में सम्पूर्णतम उत्तर है। उद्धव धीरे-धीरे उस दिव्य लोक से इस लौकिक शरीर-चेतना में लौटते हैं। अपनी आँखें पोंछते हुए, वे अन्ततः बोलना आरम्भ करते हैं, और उनके प्रथम शब्द कथन का नहीं, विस्मय का स्वर धारण करते हैं — उस व्यक्ति का विस्मय जो अभी भी अपनी स्मृति में आधा डूबा हुआ है।

सूर्य अस्त हो चुका है: एक भक्त का विलाप

उद्धव कृष्ण के जन्म अथवा किसी सुव्यवस्थित कालक्रम से आरम्भ नहीं करते। वे शोक तथा विरोधाभास से आरम्भ करते हैं — उस विचित्र अन्धत्व से जो एक ऐसे संसार को घेरे था जिसके बीच स्वयं भगवान् विचरण करते थे और फिर भी वह उन्हें देख न सका। “श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर,” वे कहते हैं, “हमारे विलुप्त वैभव के घरों को काल-अजगर ने निगल लिया है। तब मैं अपने कुशल-क्षेम के विषय में क्या कहूँ?” “बाल-लीलाओं” के वर्णन हेतु यह एक चौंकाने वाला आरम्भ है — किन्तु यह हमें बताता है कि बोल कौन रहा है। यह किसी इतिहासकार का वृत्तान्त नहीं है। यह एक भक्त का हृदय है, अभी भी प्रेम और वियोग से आहत।

वे पहले अपने ही परिवार के विषय में एक कठोर सत्य की ओर मुड़ते हैं। यह संसार अभागा है, वे कहते हैं, और उससे भी अधिक स्वयं यादव — क्योंकि यद्यपि वे दिन-प्रतिदिन श्रीहरि के साथ रहे, उनके साथ भोजन किया, उनके साथ क्रीड़ा की, फिर भी वे उन्हें पहचान न सके, ठीक वैसे ही जैसे जल के भीतर की मछली जल की सतह पर प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को नहीं पहचान पाती। सात्वत (यादव) दूसरे के मन को उसके बाह्य संकेतों से भाँप लेने में अत्यन्त बुद्धिमान थे; फिर भी, उन्हीं के घर में रहते हुए, उन्होंने सर्वभूताश्रय भगवान् को केवल अपने ही कुल के सबसे श्रेष्ठ सदस्य के रूप में माना। किन्तु, उद्धव जोड़ते हैं, यह अन्धत्व केवल उन्हीं को घेरता है जिनका हृदय अन्यत्र स्थित है। जिस व्यक्ति ने अपना हृदय श्रीहरि, अपने ही आत्मा, को पूर्णतः समर्पित कर दिया है, उसकी बुद्धि उन (यादव आदि) के तिरस्कारपूर्ण शब्दों से, जो भगवान् की अपनी माया से मोहित हैं, अथवा शिशुपाल जैसे शत्रुभाव रखने वालों से, भ्रमित नहीं हो सकती — उसकी समझ दोनों की पहुँच से परे है।



उद्धव विलाप करते हैं कि यादव, यद्यपि वे प्रतिदिन श्रीकृष्ण के साथ रहे, उन्हें पहचान न सके — ठीक वैसे ही जैसे जल के भीतर की मछली जल की सतह पर प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को नहीं पहचान पाती (श्लोक 7-10)।

वे भगवान् की स्वयं की विचित्र विवेकशीलता पर भी विस्मय व्यक्त करते हैं: जिन मनुष्यों ने कोई तपस्या नहीं की थी उन्हें एक बार अपना दिव्य रूप दिखाकर, अब उन्होंने उसे उनकी दृष्टि से छिपा लिया है, यद्यपि उनकी आँखें तृप्त नहीं हुई थीं — मानो उन्हें उसी दृष्टि से वंचित कर दिया गया हो जिसका मूल्य उन्होंने कभी पर्याप्त रूप से समझा ही नहीं था जब वह उनके पास थी। और वह रूप स्वयं, उद्धव कहते हैं, स्वयं के लिए भी एक विस्मय था — इतनी प्रचुर कृपा की पूर्णता का सौन्दर्य, जो अपनी योगमाया की शक्ति से मानव-सदृश लीलाओं के लिए इतना उपयुक्त बना, कि उसके आभूषण भी स्वयं उससे शोभा पाते प्रतीत होते थे, न कि उसे शोभा देते।

राजसूय में देखा गया रूप

उद्धव एक विशेष क्षण का स्मरण करते हैं: वही रूप, राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में एकत्रित राजाओं और ऋषियों द्वारा देखा गया, प्रत्येक नेत्र के लिए इतना पूर्ण आनन्द था कि तीनों लोकों के दर्शकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि ब्रह्मा ने इस रूप को गढ़ने में अपनी सम्पूर्ण सृजन-कला व्यय कर दी होगी — मानो सम्पूर्ण सृष्टि सदैव इसी एक रूप की ओर बढ़ रही हो।

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।

कात्स्न्येन चाद्येह गतं विधातु- र्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥

yad dharma-sūnor bata rājasūye nirīkṣya dṛk-svastyayanam tri-lokaḥ kārtsnyena cādyeha gataṁ vidhātur arvāk-sṛtau kauśalam ity amanyata

अर्थ: धर्मराज के पुत्र (युधिष्ठिर) के राजसूय यज्ञ में उस शुभ, प्रत्येक नेत्र को आनन्द देने वाले रूप को देखकर, तीनों लोकों के लोगों ने विश्वास किया कि विधाता की सम्पूर्ण कला इस सृष्टि की रचना में इसी को उत्पन्न करने में व्यय हो गई थी। (स्कन्ध 3, अध्याय 2, श्लोक 13)



राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, एकत्रित राजा तथा ऋषि भगवान् के रूप को देखते हैं और विश्वास करते हैं कि ब्रह्मा ने इसे गढ़ने में अपनी सम्पूर्ण सृजन-कला व्यय कर दी (श्लोक 13)।

वे व्रज की गोपियों का भी स्मरण करते हैं — कैसे, उनकी स्नेह-भरी मुस्कान तथा क्रीड़ाशील दृष्टियों से सम्मानित होकर, वे अपनी आँखों और अपने सम्पूर्ण मन से उनका वन-भ्रमण में अनुसरण करती थीं, अपने गृह-कार्य आधे-अधूरे छोड़कर मूर्तिवत् खड़ी रह जाती थीं। और फिर उद्धव उस विरोधाभास की ओर मुड़ते हैं जो, भक्त होते हुए भी, स्पष्टतः उनकी अपनी समझ को भी विचलित करता है: अजन्मा भगवान्, जिनका वास्तविक स्वभाव कुछ भी स्पर्श नहीं कर सकता, वासुदेव के घर में जन्म लेने का आभास कैसे धारण कर सकते हैं और मानो किसी शत्रु से भयभीत होकर व्रज में वास कैसे कर सकते हैं — और असीम, अनन्त पराक्रम के स्वामी कैसे स्वयं मथुरा नगरी से, मानो आक्रामक कालयवन से वास्तव में भयभीत होकर, भाग सकते हैं? “यह मुझे विस्मित करता है,” उद्धव स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं, “मानो यह उनकी दिव्यता से मेल न खाता हो” — और इस स्वीकृति में हमें एक परिपक्व भक्त की ईमानदारी अनुभव होती है, जो यह दिखावा नहीं करता कि उसने अपने प्रिय भगवान् के हर रहस्य को सुलझा लिया है, अपितु उस रहस्य के माध्यम से ही उन्हें प्रेम करता है।

उनका मन पीड़ा से भर जाता है, वे कहते हैं, एक और बात स्मरण करते हुए: कृष्ण तथा बलराम का अपने ही माता-पिता के चरणों में झुककर यह कहना, “प्रिय पिता तथा माता, कंस के भय से इतने आतंकित होकर, हम (बलराम और मैं) आपकी कोई सेवा न कर सके — कृपया हमें क्षमा करें!” कि सबके स्वामी भगवान् अपने ही माता-पिता के आगे झुकें और भय के कारण अदा न कर सके ऋण के लिए क्षमा माँगें — यह

छोटा-सा, मानवीय भाव उद्धव को किसी भी शक्ति-प्रदर्शन से अधिक भावविभोर कर देता है।

शत्रु के प्रति भी करुणा, घृणा के माध्यम से भी मुक्ति

यह विलाप, अपनी अन्तिम गति में, करुणा की ओर मुड़ता है — तथा श्रीमद्भागवत की सबसे चौंकाने वाली शिक्षाओं में से एक की ओर। उद्धव स्मरण करते हैं कि कैसे चेदि के राजा शिशुपाल, जिन्होंने अपने पूरे जीवन कृष्ण से घृणा की, ने भगवान् के साथ वह ऐक्य प्राप्त किया जिसे योगीजन योग की कठोर साधना से जीवन-भर परिश्रम करके प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। वे उन वीरों का भी स्मरण करते हैं जो महाभारत युद्ध में अर्जुन के बाणों से मारे गए, जो अपनी आँखों से कृष्ण के मुखमण्डल का सौन्दर्य पीते हुए मरे, और इस प्रकार उनके ही परम धाम को प्राप्त हुए। भगवान् की अपनी महिमा भी उद्धव को विनम्र बना देती है जब वे उसे इस अगली स्मृति के साथ रखते हैं: यही कृष्ण, जो तीनों लोकों तथा तीनों गुणों के अधिपति हैं, जिन्हें सृष्टि के शाश्वत रक्षक अपने मुकुट-धारी शीश उनके चरणों में झुकाकर पूजते हैं, फिर भी राजसिंहासन पर विराजमान राजा उग्रसेन के समक्ष विनम्रतापूर्वक खड़े होकर अपनी बात कहते, केवल इतना कहते हुए, “हे स्वामी, यह आपको ज्ञात हो।” कि सर्व-स्वामी भगवान् एक सांसारिक राजा के समक्ष ऐसी सरल विनम्रता के साथ स्वयं को प्रस्तुत करें, उद्धव स्वीकार करते हैं, आज भी उनके हृदय को पीड़ा पहुँचाता है — एक कोमलता जिसे वे किसी भी शक्ति-प्रदर्शन से कम विस्मयकारी नहीं मानते (श्लोक 21-22)। और फिर उद्धव राक्षसी पूतना का नाम लेते हैं — जिसे बालक कृष्ण को घातक विष लगे स्तन से दूध पिलाकर मार डालने के लिए भेजा गया था — और विस्मित होते हैं कि उसे भी, बदले में, एक सच्ची पालक-माता की गति प्राप्त हुई। “क्या कोई ऐसा दयालु है,” उद्धव पूछते हैं, “जिसकी शरण में हमें उनके अतिरिक्त जाना चाहिए?”



उद्धव विस्मित होते हैं कि पूतना, जो बालक कृष्ण को विष देने आई थी, उसे भी बदले में एक सच्ची पालक-माता की गति प्राप्त हुई — यह भगवान् की उस असीम करुणा का प्रतीक है जो उनसे घृणा करने वालों तक फैली है (श्लोक 23)।

वे इस विस्मय को उन राक्षसों तक भी विस्तृत करते हैं जिन्होंने भगवान् से खुले युद्ध में लड़ाई की, उनका मन उन पर स्थिर — चाहे द्वेषपूर्ण ही सही — जब उन्होंने युद्धभूमि में गरुड़ को अपने ऊपर झपटते हुए देखा, विष्णु सुदर्शन चक्र लिए उसकी पीठ पर सवार। मन को परम-सत्ता पर स्थिर करना, उद्धव सुझाते हैं, अपने आप में मुक्ति देने की शक्ति रखता है, चाहे यह स्थिरता भक्ति में लिपटी हो या घृणा में, क्योंकि अन्ततः

मन का भगवान् से सम्पर्क ही महत्त्वपूर्ण है, न कि उसके साथ आने वाला भाव। यहाँ उद्धव के विस्मयकारी विलाप (श्लोक 7-24) का महान् चाप समाप्त होता है — एक संसार के अन्धत्व पर शोक, अपनी ही महिमा को छिपाने वाले भगवान् पर विस्मय, तथा अन्ततः इतनी विशाल करुणा पर श्रद्धा जो उनके शत्रुओं को भी उद्धार दे देती है।

कारागार में जन्म, गोपनीयता में पालन

अपनी वेदना और विस्मय को उड़ेल चुकने के बाद, उद्धव अब उस मधुर स्मृति की ओर मुड़ते हैं जो इस अध्याय को इसका नाम देती है — भगवान् का अपना जन्म और बाल-लीलाएँ। पृथ्वी का भार हरने हेतु, ब्रह्मा की प्रार्थना के उत्तर में, भगवान् ने राजा कंस के कारागार में वासुदेव तथा देवकी के पुत्र के रूप में जन्म लिया। नवजात शिशु की सुरक्षा के भय से आतंकित होकर, वासुदेव उसी रात उन्हें नन्द के व्रज में ले गए, जहाँ कृष्ण — अपने बड़े भाई बलराम के साथ — ग्यारह वर्षों तक रहे, अपनी वास्तविक महिमा को बाहरी संसार से सावधानीपूर्वक छिपाए रखते हुए।



कंस के कारागार में जन्म लेकर तथा वासुदेव द्वारा गुप्त रूप से व्रज में नन्द के घर ले जाए गए, बालक कृष्ण बलराम के साथ गोपों के बीच पलते हैं, ग्यारह वर्षों तक उनकी वास्तविक महिमा संसार से छिपी रहती है (श्लोक 25-26)।

आगे जो आता है वह एक शीघ्र, स्नेहिल रूपरेखा है — दशम स्कन्ध में बाद में दिए जाने वाले पूर्ण, प्रेमपूर्ण विवरण के समान नहीं, अपितु एक भक्त का संक्षिप्त, स्नेहिल विहंगावलोकन। यमुना के तट के उपवन में, जो कलरव करते पक्षियों से भरा था, भगवान् गोप-बालकों के मध्य क्रीड़ा करते, बछड़े चराते। उन्होंने बाल-सुलभ भाव प्रदर्शित किए जो व्रजवासियों की दृष्टि को प्रिय लगते — कभी रोते हुए प्रतीत होते, कभी हँसते हुए, तथा कभी सिंह-शावक की भाँति निष्कपट दृष्टि से देखते। थोड़ा बड़े होने पर, उन्होंने भव्य श्वेत बैलों और गौओं को चराना आरम्भ किया, तथा अपनी बाँसुरी के संगीत से साथ चलने वाले गोप-बालकों का मनोरंजन करते। और इसी बीच, जिसे उद्धव मात्र क्रीड़ा कहते हैं, उन्होंने कंस द्वारा भेजे गए हर राक्षस को — जो माया में कुशल थे, कोई भी रूप धारण कर सकते थे — उतनी ही सहजता से समाप्त कर दिया जितनी सहजता से कोई बालक अपने ही खिलौने तोड़ता है।

कालिय, गोवर्धन तथा रास

उद्धव अपने वर्णन का समापन चार लीलाओं के साथ करते हैं, लगभग एक सूची के रूप में, प्रत्येक अपने आप में एक अद्भुत घटना। उन्होंने सर्प-प्रमुख कालिय को वश में करके यमुना से निष्कासित कर दिया, उसके विषैले जल पीकर मृत हुई गौओं तथा गोपों को पुनर्जीवित किया, तथा नदी के जल को पुनः पीने योग्य बना दिया। उन्होंने नन्द को व्रज की सम्पदा को इन्द्र-यज्ञ से हटाकर गौओं की पूजा वाले यज्ञ की ओर मोड़ने के लिए राजी किया — जो श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सहायता से सम्पन्न हुआ — इस प्रकार स्वर्ग के राजा के अहंकार को धीरे से नम्र किया।



भगवान् व्रजवासियों को इन्द्र की मूसलाधार वर्षा से बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत को खिलौने की छतरी की भाँति उठा लेते हैं, तथा बाद में, चाँदनी से उज्ज्वल शरद्-सन्ध्याओं में, गोपियों के साथ गाते तथा नृत्य करते हैं (श्लोक 33-34)।

जब इन्द्र, अपनी पूजा में इस विघ्न से क्रुद्ध होकर, भूमि पर मूसलाधार वर्षा बरसाते हैं, भगवान् — उद्धव यहाँ विदुर को सीधे सम्बोधित करते हुए “धन्य विदुर!” कहते हैं — गोवर्धन पर्वत को उतनी ही सरलता से उठा लेते हैं जितनी सरलता से कोई बालक खिलौने की छतरी उठाता है, तथा व्रज के भयभीत निवासियों को उसके नीचे सुरक्षा प्रदान करते हैं जब तक संकट टल न जाए। और अन्त में, इन समापन श्लोकों में सबसे संक्षिप्त तथा सबसे काव्यात्मक श्लोक में, उद्धव उन शरद्-सन्ध्याओं का स्मरण करते हैं, चाँदनी से उज्ज्वल, जब भगवान् — “स्त्रियों के मण्डल के आभूषण” — मधुर स्वरों में गाते और युवतियों की टोली के मध्य रमण करते, केवल अपनी उपस्थिति मात्र से उन्हें अनुगृहीत करते।

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ।

गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥

śarac-chaśi-karair mṛṣṭaṁ mānayan rajanī-mukham gāyan kala-padaṁ reme strīṇāṁ maṇḍala-maṇḍanaḥ

अर्थ: शरद्-चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित सन्ध्याओं का सम्मान करते हुए, उन्होंने मधुर, सुरीले स्वरों में गाया और रमण किया, स्त्रियों के मण्डल के साक्षात् आभूषण। (स्कन्ध 3, अध्याय 2, श्लोक 34)

इस एकल, दीप्तिमान दृश्य के साथ — संगीत, चाँदनी, तथा दिव्य सहचर्य का आनन्द — द्वितीय अध्याय समाप्त होता है, इसकी समाप्ति-पंक्ति विदुर को दिए गए उद्धव के प्रथम महान् उद्गार की समाप्ति को चिह्नित करती है।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. गहनतम भक्ति के पास कभी-कभी शब्द ही नहीं होते। उद्धव का मौन, अश्रु-भरा एक घण्टा स्वयं विदुर के प्रश्न का सम्पूर्णतम उत्तर है — यह स्मरण कराता है कि भगवान् की स्मृति भाषा की क्षमता को पूर्णतः लाँघ सकती है (श्लोक 1-6)।
2. भगवान् के निकट होना उन्हें पहचानने की गारण्टी नहीं है। यादव प्रतिदिन कृष्ण के साथ रहे, फिर भी, जल के भीतर की मछली की भाँति चन्द्रमा को न पहचान पाते हुए, वे नहीं देख सके कि वे वास्तव में कौन थे — भक्ति के बिना निकटता भी हृदय को अन्धा ही रखती है (श्लोक 7-10)।
3. भगवान् की करुणा उन तक भी पहुँचती है जो उनसे घृणा करते हैं। शिशुपाल की आजीवन शत्रुता, युद्ध में मारे गए राक्षस, और यहाँ तक कि पूतना का हत्या-भाव भी, प्रत्येक अपने विचित्र ढंग से, परम-सत्ता के सम्पर्क से मुक्ति के मार्ग में परिवर्तित हो गए (श्लोक 19, 23-24)।
4. स्वयं भगवान् भी अपने माता-पिता के आगे झुकते हैं। वासुदेव तथा देवकी से कृष्ण-बलराम की सरल क्षमा-याचना — भय के कारण न कर सकी सेवा के लिए क्षमा माँगते हुए — दर्शाती है कि सच्ची महानता कभी विनम्रता के लिए बहुत गर्वित नहीं होती, जैसा तीनों लोकों के अधिपति होते हुए भी राजा अग्रसेन के समक्ष उनकी शान्त विनम्रता दर्शाती है (श्लोक 17, 21-22)।
5. दिव्य लीलाएँ एक साथ क्रीडामय और रक्षात्मक दोनों हो सकती हैं। चाहे कालिय को वश में करना हो, गोवर्धन उठाना हो, या शरद्-चाँदनी में नृत्य करना हो, ब्रज में भगवान् की गतिविधियाँ सहज क्रीड़ा को अपने आश्रितों की वास्तविक, मूर्त देखभाल के साथ जोड़ती हैं (श्लोक 27-34)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के स्वरूप में ही कुछ शान्त शिक्षाप्रद है। विदुर एक सरल प्रश्न पूछते हैं — मुझे भगवान् का समाचार सुनाओ — और उन्हें प्राप्त होती है, पहले, सूचना नहीं अपितु मौन: एक भक्त के प्रेम से पूर्णतः अभिभूत होने का एक घण्टा। उसके पश्चात् ही वाणी आती है, और तब भी, वह वाणी वह सुव्यवस्थित कालक्रम नहीं है जिसकी हम अपेक्षा कर सकते हैं, अपितु शोक, विरोधाभास तथा विस्मय का एक विस्मयकारी, लगभग अव्यवस्थित उद्गार है, जो बार-बार विषय के चारों ओर परिक्रमा करता है, इससे पहले कि वह अन्ततः कृष्ण के जन्म तथा बचपन के शान्त कथन में स्थिर हो जाए। सम्भवतः यही है कि भगवान् की सच्ची स्मृति वास्तव में कैसी दिखती है — माँगने पर दी गई कोई रिपोर्ट नहीं, अपितु कुछ ऐसा जो किसी भी क्रम में डाले जाने से पहले हृदय को पूर्णतः अभिभूत कर देना चाहिए। उद्धव किसी स्वच्छ कथा के लिए अपनी भावना को नियन्त्रित नहीं करते; भावना पहले आती है, और कथा तभी अनुगमन करती है जब उसने अपनी बात कह ली हो। भक्ति, यह अध्याय सुझाता है, अव्यवस्थित, अभिभूतकारी, यहाँ तक कि शब्दातीत हो सकती है — और यह भी भगवान् को स्मरण करने का एक सम्पूर्ण तथा सार्थक रूप है।

एक दैनिक भक्ते-अभ्यास

आज, किसी से भी भगवान् की बात करने से पहले — प्रार्थना में, बातचीत में, किसी बालक को कोई श्लोक सिखाते हुए — कुछ शान्त श्वासों के लिए ठहरें और स्वयं को केवल यह अनुभव करने दें कि कृष्ण को स्मरण करते समय क्या उभरता है, इसे शब्दों में व्यवस्थित करने की जल्दी किए बिना। उद्धव के उदाहरण का अनुसरण करते हुए, एक क्षण के मौन को, अथवा अश्रुओं को, अथवा सरल स्थिरता को स्वयं में भक्ति का एक रूप होने दें, न कि “वास्तविक” प्रार्थना आरम्भ होने से पहले की एक देरी। फिर, जब आप तैयार हों, कोमलता से दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मृति को स्वयं में सम्पूर्ण होने दें, ठीक वैसे ही जैसे उद्धव का मौन घण्टा उनके उत्तर का एक भी शब्द बोले जाने से पहले सम्पूर्ण था।

उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का द्वितीय अध्याय विदुर के प्रश्न का उत्तर उसी एकमात्र ढंग से देता है जिस तरह उद्धव जैसी गहराई का भक्त वास्तव में दे सकता है — किसी स्वच्छ रिपोर्ट से नहीं, अपितु मौन के एक घण्टे से, उस संसार के विचित्र अन्धत्व पर एक विस्मयकारी विलाप से जो भगवान् के साथ रहकर भी अन्धा रहा, इतनी सम्पूर्ण करुणा पर एक विस्मित चिन्तन से जो घृणा को भी उद्धारित कर देती है, और तत्पश्चात् ही, संक्षेप में तथा स्नेह से, स्वयं बाल्य-कथा से: कारागार में जन्म, गोपों के मध्य गुप्त बचपन, एक वश में किया गया सर्प, एक उठाया गया पर्वत, तथा चाँदनी के नीचे संगीत की एक शरद्-रात्रि। इस असामान्य स्वरूप के पीछे कुछ ऐसा है जिसे श्रीशुकदेव परीक्षित को — तथा हमें — केवल सीखने के बजाय अनुभव कराना चाहते हैं: कि भगवान् की सच्ची स्मृति कभी भी एक व्यक्ति से दूसरे को दी गई साधारण सूचना नहीं होती। यह कुछ ऐसा है जो पहले स्मरण करने वाले को अभिभूत करता है, और तभी वाणी बनता है। उद्धव के अश्रु, न कि उनके अन्तिम शब्द, इस अध्याय का वास्तविक हृदय हैं।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, अध्याय 2, पृष्ठ 139–141।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सार-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका की पुनरावृत्ति नहीं है। किसी भी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-3-adhyay-2-uddhav-bal-leela-varnan.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

